जौनपुर

स्थानीय शिक्षा रपट

पहाड़ों में नई उम्मीद : स्कूली पढ़ाई और मांग अच्छी शिक्षा की

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज़
बेंगलूर

पहाड़ों में नई उम्मीद :
स्कूली पढ़ाई और मांग अच्छी शिक्षा की

स्थानीय शिक्षा रपट
जौनपुर, उत्तराखण्ड

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज़
बेंगलूर 560 012

© नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
2002

प्रकाशन
नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
नेशनल इन्डीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ कैम्पस
बेंगलूर 560 012

रपट की प्रतियाँ निम्नलिखित पता से प्राप्त की जा सकती है।
नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
नेशनल इन्डीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ कैम्पस
बेंगलूर 560 012
दूरभाष : 080-360 4351
ई-मेल : mgp@nias.iisc.ernet.in

ISBN 81-87663-36-7

एन.आइ.ए.एस. विशेष प्रकाशन 13-2002

मुद्रक
वर्बा नेटवर्क सर्वविशेस
193, कोजी अपार्टमेन्टस, 8 मेन, 12 कांस
मलेश्वरम, बेंगलूर - 560 003
दूरभाष : 334 6692

यह संक्षिप्त रपट बंगलोर की नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवान्स्ड स्टडीज़ की सोश्यालाजी और सोश्यल एन्थ्रापोलाजी इकाई के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पर कराए गए अध्ययन का हिस्सा है। फील्ड अनुसंधान अक्टूबर 1999 और नवम्बर 2000 के मध्य नीचे लिखे इलाको में कराया गया था– जौनपुर ब्लाक (उत्तरांचल), जयपुर (राजस्थान), खातेगांव ब्लाक (मध्यप्रदेश), बंगलोर (कर्नाटक), तंजावुर (तामिलनाडु) और चिराला (आन्ध्रप्रदेश) । सभी इलाकों की इकट्ठी रपट अलग से दी जाएगी।

स्थानीय शिक्षा की इस रपट का मकसद एक तो यह है कि जिन समुदायों के सदस्यों के साथ यह अध्ययन किया गया था उन्हें इस अध्ययन के निष्कर्षों में भागीदार बनाया जाए और प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़े मुद्दों पर बहस शुरू की जाए। इसलिए यह रपट स्कूल और स्कूली पढ़ाई की समस्याओं और हालातों का एक ब्यौरा ही हैं। हमें उम्मीद है कि यह रपट हर इलाके में समुदाय के लोगों को, शिक्षकों को, निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को, पालकों को, शिक्षा विभाग के कर्मचारियों को और उन सभी लोगों को उपयोगी लगेगी जो प्राथमिक शिक्षा को आगे बढ़ाने में रुचि रखते हैं।

एस. आई. डी. एच. ने इस अध्ययन के लिए संस्थागत सहायता दी है। फील्ड शोध में कड़ी मेहनत और निष्ठा के लिए सियासिंग चौहान को खास तौर पर धन्यवाद। अनुराधा जोशी और पवन गुप्ता ने फील्ड अध्ययन की शुरूआत

करने में सहायता दी। डा. अर्चना मेहेण्डले और सरिता तुकाराम ने आंकड़ों को और इस रपट को पुरा करने में सहायता दी और कला सुन्दर ने रपट का सम्पादन किया। इन सब लोगों को धन्यवाद। इस अध्ययन में भाग लेने वाले छात्रों, बाहर के बच्चों, प्राचार्यों शिक्षकों, माता–पिताओं और समुदाय के दूसरे सदस्यों सभी को हमें समय देने के लिए, धीरज के लिए और सहयोग के लिए मेरा विशेष धन्यवाद।

इस शोध के लिए नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवान्स्ड स्टडीज़, बंगलोर (एन. आइ. ए. एस.) और स्पेन्सर फाउन्डेशन (शिकागो) ने सहयोग दिया था। स्थानीय शिक्षा की रपट को विकसित करने के लिए नई दिल्ली की कनाडियन हाई कमीशन के कनाडियन इन्टरनेशनल डेवलपमेंन्ट ऐजेन्सी (सीडा) ने सहायता दी थी।

मार्च 2003

ए आर वासवी

एन. आइ. ए. एस, बंगलोर

अंग्रेजी से अनुवादः

डा. सुरेश मिश्र, भोपाल

पहाड़ों में नई उम्मीद : स्कूली पढ़ाई और मांग अच्छी शिक्षा की

दुर्गम इलाका, बिखरी हुई बस्तियां, बरबाद पारिस्थितिकी, न टिकने वाली खेती, प्रवासी पुरुष और काम के भार से दबी औरतें। ये वे मुश्किलें हैं जिनका सामना निचले हिमालय में बसे इलाके टेहरी गढ़वाल के लोगों को करना पड़ता है। फिर भी पहाड़ों में एक नयी आशा का संचार हुआ है, जो अलग राज्य के गठन के लिए जनता के आन्दोलन से संबंधित है और जिसने लोगों को उनके अधिकारों और इलाके की जरूरतों के प्रति जागरूक किया है। यह उम्मीद इस संभावना के आसपास केन्द्रित है कि उस इलाके की पारिस्थितिकी को पुनर्जीवन मिल सकेगा, समुदायों का विकास होगा और उनकी आमदनी के साधन बढ़ेंगे। इन उम्मीदों के चलते बच्चों के लिए बेहतर और प्रासंगिक शिक्षा की मांग खास तौर से की जा रही है।

जब यह अध्ययन किया जा रहा था तब यह साफ हुआ था कि लोग बुनियादी शिक्षा की मांग कर रहे हैं। इस अध्ययन का मकसद यह समझना था कि उस इलाके में प्रारम्भिक शिक्षा की हालत क्या है और उस इलाके में मौजूदा रवैया क्या है। जौनपुर ब्लाक के तीन अलग–अलग गांवों (नीचे विवरण दिया गया है) से प्राप्त जानकारी[1] के आधार पर इस अध्ययन में उन तत्वों को जानने की कोशिश की गयी है जिन्होंने इस इलाके में प्राथमिक शिक्षा के विकास के रास्ते में बाधाएं पैदा की हैं या विकास में योगदान दिया है।

1. यह अध्ययन अगस्त 1999 और अप्रैल 2000 के बीच सिया सिंग चौहान द्वारा किये गए सहभागी अवलोकन के आधार पर किया गया है। उन्होंने शिक्षा से संबंधित मुद्दों पर मातापिता, बच्चों, शिक्षकों और समुदाय के सदस्यों का साक्षात्कार लिया। उन्होंने तीन गांवों में कक्षाओं और स्कूल के कामकाज के तरीके का अवलोकन किया और स्कूलों और समुदाय के बीच के रिश्तों पर गौर किया।

जौनपुर ब्लाक, टेहरी गढ़वाल

हालांकि टेहरी गढ़वाल अपनी कुदरती खूबसूरती के लिए मशहूर है, वहां की ढलवां पहाड़ियां और बिखरी बस्तियों में कोई ज्यादा विकास नहीं हुआ है। आबादी के कम धनत्व और पहाड़ की ढलानों में गहरी खेती और पशुपालन पर आधारित अर्थव्यवस्था के बावजूद इस इलाके में खेती की पैदावार कम होती है, जमीन के बहुत टुकड़े होते हैं, औद्योगिक विकास का स्तर कम है और स्थानीय रोजगार कम हैं। इस इलाके की आर्थिक हालत के कारण कई दशकों से लोग शहरों को पलायन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप, खेती के काम का भार, पशुपालन और दूसरी आर्थिक जिम्मेदारियां महिलाएं ही खास तौर पर सम्हालती हैं।[2]

लिंग पर आधारित काम के ऐसे बंटवारे के कारण जिले की साक्षरता के स्तर पर भी लिंग भेद की गहरी छाप है। 1991 में मर्दों की साक्षरता दर 72.09 फीसदी थी, जबकि स्त्रियों की साक्षरता दर 26.31 फीसदी थी।[3] 46 फीसदी का यह फर्क देश में सबसे ज्यादा फर्क में से एक है। लेकिन 2001 की जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि यह अन्तर 10 फीसदी कम हो गया है। मर्दों की साक्षरता दर 85.62 हो गयी है और स्त्रियों की साक्षरता दर 49.78 फीसदी हो गयी है।[4] जिले के साक्षरता स्तर की कुल मिलाकर विशेषता यह है कि लिंग का अन्तर बहुत ऊंचा है जबकि सामान्य साक्षरता का स्तर नीचा है।

टेहरी गढ़वाल में ऊंची जाति के लोगों की आबादी ज्यादा है। 1991 की जनगणना के अनुसार, इस इलाके में ऊंची जाति के हिन्दुओं की आबादी 80

2. बोरा, आर. एस. (1996) हिमालयन माइग्रेशन: ए स्टडी आफ द हिल रीजन्स आफ उत्तरप्रदेश. नई दिल्ली : सेज, और साथ ही मैकडूगल, लोरी (2000) 'जेण्डर सगेप इन लिअरेसी इन उत्तर प्रदेश : क्वश्चन्स फार डिसेन्ट्रलाइज्ड एजुकेशनल प्लानिंग' इकानामिक एण्ड पोलिटिकिल वीकली, जिल्द 35 (19) पृष्ठ 1649–1658

3. सेन्सस आफ इण्डिया, 1991

4. सेन्सस आफ इण्डिया, 2001

फीसदी है जबकि देश में यह 13 फीसदी है। अनुसूचित जाति की आबादी 14.2 फीसदी और अनुसूचित जनजाति की आबादी 0.11 फीसदी है। जौनपुर की आबादी का ढांचा भी इसी तरह का है : 1991 में 18.84 फीसदी आबादी अनुसूचित जाति की और 0.69 फीसदी आबादी अनुसूचित जनजाति की थी और बाकी सब ऊंची जाति के हिन्दू थे।

जिन गांवों का अध्ययन किया गया

जौनपुर ब्लाक के तीन गांवों में से तीन स्कूल विस्तृत अध्ययन के लिए चुने गए। इनमें से बरनी और कुतिका गांव मुख्य सड़क से हटकर हैं और पुश्यां ज्यादा दुर्गम इलाके में है।

बरनी एक मंझोले आकार का गांव है और उसमें 16 परिवार राजपूतों के और तीन परिवार डोमों (ढोल बजाने वाले, जिन्हें अब अनुसूचित जाति का मान लिया गया है) के हैं और कुल आबादी 200 है। अनुसूचित जाति के परिवारों के पास बहुत कम जमीन है (10 नाली से कम[6]) और वे मुख्यतः राजपूतों के खेतों में खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते हैं। राजपूतों के हर परिवार के पास औसतन 60 नाली जमीन है और वे दूसरे धन्धे भी करते हैं जैसे दूकानदारी आदि। वे सरकारी नौकरियों में भी हैं। बरनी गांव के बच्चे सरकारी स्कूल में जाते हैं जो या तो गांव में है या कुतिका (गांव से 2 किलोमीटर) के एन.जी.ओ. स्कूल में या काम्पटी (गांव से 5 किलोमीटर) के शिशु मन्दिर में, जो एक एन.जी.ओ. द्वारा चलाया जाता है, जाते हैं।

कुतिका एक छोटा सा गांव है जिसमें 7 परिवार हैं जिनमें से 5 डोम (चमार, जो अनुसूचित जाति के हैं) हैं और बाकी राजपूत जाति के हैं। गांव की कुल आबादी 78 है जिसमें से 57 अनुसूचित जाति के और 21 राजपूत हैं। गांव के

5. तीनों गांवों के नाम बदल दिये गए हैं। यह इसलिए किया गया है कि जिससे उन लोगों की पहचान छुपी रहे जिनका साक्षात्कार लिया गया है और जिनके मत रपट में दिये गए हैं।

6. 50 'नाली' 1 हेक्टेयर के बराबर होता है।

निवासियों का मुख्य धंधा खेती और पशुपालन हैं। कुछ लोगों की गांव में घरू चीजों की फुटकर दूकानें हैं। अनुसूचित जाति के लोगों के पास 60 नाली जमीन से ज्यादा नहीं हैं जबकि राजपूतों के पास 200 नाली जमीन है। आधे से कम गांव (42 फीसदी) अपढ़ है। कुतिका के बच्चे या तो स्वयंसेवी संस्था द्वारा चलाये जा रहे स्कूल में जाते हैं या बरनी के सरकारी स्कूल में।[7] जो आगे पढ़ाई जारी रखते हैं वे कॅम्पी के सरकारी कालेज में जाते हैं।

पुश्या एक टोला हैं जिसमें सिर्फ 7 परिवार हैं जो मुख्यतः डोमों(चमार, जो अनुसूचित जाति के हैं) के हैं ये लोग पड़ोस के हिमाचल प्रदेश से आए हैं और इस गांव में पिछले 7 दशकों से रह रहे हैं। इन लोगों का मुख्य धन्धा खेती और पशुपालन है। चूंकि लोगो के पास जमीन कम हैं इसलिए खेती की पैदावार परिवारों की गुजर सिर्फ 6 माह के लिए कर सकती है। वे चमड़े का काम करते हैं जिसके लिए उन्हें नगद या जिन्स (अकसर अनाज) में भुगतान मिलता है। औरतें अपनी खुद की जमीनों को और जानवरों की देखभाल करती हैं और मर्द लोग खेतिहर मजदूरों के रूप में काम करते हैं। चूंकि ये लोग हिमाचल प्रदेश से आए हैं, ये हिमाचली बोलते हैं और इस इलाके के लोगों से अलग त्यौहार मनाते हैं। 2000 में पुश्या की कुल आबादी 42 में से सिर्फ 24 (57 फीसदी) साक्षर थे।

इन तीन गांवों का सामाजिक और आर्थिक चेहरा इस प्रकार हैं:

माता–पिता की शिक्षा : पिताओं में से आधे से कुछ ज्यादा (51. 61 फीसदी) साक्षर थे, 25 फीसदी साक्षर नहीं थे और करीब 23 फीसदी अपने हस्ताक्षर कर सकते थें करीब 39 फीसदी माताएं साक्षर थीं जबकि आधे से कुछ ज्यादा (51. 61फीसदी) साक्षर नहीं थीं। करीब 10 फीसदी माताएं आपने हस्ताक्षर कर सकती थीं।

7.1990 के पहले जब गैरसरकारी स्कूल नहीं था तब कुतिका के बच्चे बरनी के सरकारी स्कूल में जाते थे जो 2 किलोमीटर दूर है।

परिवार का ढांचाः जिन परिवारों का अध्ययन किया गया उनमें से ज्यादातर (67. 74 फीसदी) संयुक्त परिवार थे। बाकी छोटे परिवार थे। जिन परिवारों का साक्षात्कार लिया गया उनमें से 62 में ही रिश्तेदार भी रहते थे।[8] परिवारों में हरएक में औसतन 11. 7 सदस्य थे।

जातिगत ढांचा और रिश्तेदार : अध्ययन किये गए परिवारों में से 29 फीसदी परिवार अनुसूचित जाति के थे जैसे, बजगी, डोम और कोलता। आधे से ज्यादा (58 फीसदी) परिवार ऊंची जातियों, खासकर राजपूतों के थे और कुछ परिवार ब्राह्मणों के थे। हालांकि जातिगत तनावों की खबर नहीं थी पर गांव में छुआछूत का चलन हैं। अनुसचित जाति के सदस्य राजपूतों के घरों में दाखिल नहीं हो सकते क्योंकि उन्हें 'अछूत' ाना जाता हैं। ऐसा कोई घर नहीं था जहां अंतर्जातीय विवाह हुआ हो।

धन्धा : ज्यादातर (66 फीसदी) पिता खेती के धन्धे में लगे हैं और करीब 22 फीसदी खेतिहर मजदूरों के रूप में काम करते हैं जबकि ऊंची जाति के ज्यादातर लोगों के पास जमीन हैं, अनुसूचित जाति के कई परिवार खेतिहर मजदूर के रूप में मिली मजदूरी पर निर्भर हैं। खेती के काम के बदले राजपूत उन्हें भोजन और/या अनाज देते हैं, हालांकि अब इसके स्थान पर नकद भुगतान का चलन होने लगा है। माताओं में ज्यादातर (82 फीसदी) अपने ही खेतों में काम करती हैं। बाकी परिवार निर्माण के कामों,, छोटे मोटे धन्धों, अर्द्ध कुशल कामों और बाबूगिरी या नौकर के कामों में लगे हैं।

संगठनात्मक सदस्यता : ज्यादातर माता–पिता किसी स्थानीय संगठन के सदस्य नहीं हैं कुछ लोग (62 में सेस 8) पंचायतों से जुड़े हैं और कुछ औरतें (62 में से 7) महिला संघ से जुड़ी हैं। 3 औरतें पंचायतों से भी जुड़ी हैं।

---

8. वे परिवार जिनमें अलग–अलग परिवारों के सदस्य रहते थे , जैसे, इन घरों में रिश्तेदार काफी समय से रहते थे।

पलायन : 15 से 25 साल की उम्र के मर्द, खासकर राजपूत, जो माध्यमिक स्तर पक पढ़े हैं, देहरादून, दिल्ली, मसूरी, हिमाचल प्रदेश और चंडीगढ़ चले गये हैं। फिलहाल पलायन के स्तर में कमी आयी है क्योंकि कई लोग पड़ोस में ही रोजगार ढूंढ़ लेते हैं।

आठ माह में साक्षात्कारों और अवलोकनों के जरिये किये गए अध्ययन के निष्कर्ष नीचे दिये गये हैं।

शिक्षा के लिए और संस्था बनाने के लिए लोगों को जोड़ना

तीनों गांव के निवासी अपने बच्चों की शिक्षा को बहुत महत्व देते हैं। तीनों गांवों के माता–पिता महसूस करते हैं कि निरक्षरता नुकसानददायक होबी हैं कई लोगों ने कहा, "शिक्षित लोग खेती में तकनालाजी का इस्तेमाल कर सकते हैं", शिक्षा से हमें अपनी पैदावार बढ़ाने के लिए नर्द तकरीकों का इस्तेमाल करने में सहायता मिलती है और बाहर अनाज बेचने में और इससे जीवन बेहतर होता है" हालांकि शिक्षा का खास मकसद रोजगार माना जाता है, पर ऐसा भी माना जाता हैं कि यह "लेखा और हिसाब किताब" के लिए महत्वपूर्ण है", सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए" और "धोखा खाने से बचने के लिए" के लिए भी जरूरी है। वे यह भी मानते हैं कि अंग्रेजी (जिसके बारे में उनका ख्याल है कि इसका व्यापक रूप से इस्तेमाल होता हैं) बुजुर्गों को नुकसान में डाल दिया है।

बच्चों को स्कूल भेजने के लिए सामाजिक दबाव भी है। कुछ मामलों में बच्चे इसलिए स्कूल भेज दिये जाते हैं कि जिससे सामाजिक रूप से हंसी उड़ाई न जाए। जैसा कि कक्षा 2 के एक लड़के ने बताया, "अनपढ़ को कोई लड़की भी पसन्द नहीं करती।" इस प्रकार स्कूल जाना बच्चों के लिए इन समुदायों में एक रिवाज बन गया है। कुतिका के बच्चों ने अपढ़ के बारे में कहा कि वे 'बुद्धू" हैं, "वे हिन्दी धाराप्रवाह नहीं बोल सकते", और "गंदे" हैं। शिक्षा से

होने वाले कई फायदों का जिक्र करते हुए बुजुर्ग और बच्चे कहते हैं कि "जो पढ़े लिखे हैं वे नौकरी कर सकते हैं", "उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता", और महसूस किया कि "शिक्षित लोग सम्पन्न हो सकते हैं जबकि अपढ़ मजदूर ही बने रह जाते हैं"।

स्कूली शिक्षा को इन समुदायों में ऊंची प्राथमिकता है, इसका सबूत नीचे लिखे बयान से मिलता है : "यह ठीक है कि सड़कें खराब हैं, टेलीफोन नहीं है या बिजली नहीं हैं, लेकिन स्कूल और शिक्षा अच्छी होना चाहिए।" गैर सरकारी संस्थाओं की उपस्थिति ने और स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में उनके काम से गांव के निवासियों की जागरूकता बढ़ी है। इसके अलावा, सरकारी विभागों में रोजगार के अवसर,, ज्यादा संचार साधन और बाहर के लोगों से सम्पर्क और गांवों में स्कूलों की स्थापना इन सभी बातों ने मिलकर शिक्षा के लिए इच्छा जगा दी है।

पैदल चलकर जाने की दूरी पर स्कूल स्थापित होने से भी बच्चों की दर्जसंख्या बढ़ी हैं। ज्यादातर बच्चों (93.55 फीसदी) के लिए स्कूल की दूरी एक किलोमीटर से भी कम है। सिर्फ कुछ बच्चों को ही स्कूल के लिए 3–5 किलोमीटर की दूर तक जाना पड़ता है। करीब–करीब सभी बच्चे पैदल स्कूल जाते हैं। हालांकि कुल बच्चों के आधे बच्चे (43.55 फीसदी) पांच मिनट के भीतर स्कूल पहुंच जाते हैं पर सात बच्चे ऐसे थे जिन्हें अपने स्कूल पहुंचने में आधा घण्टा लगता था।

स्कूल अब स्वीकार्य हो गये हैं यह बात इससे पता चलती है कि तीन गांवों के 6 से 11 साल की उम्र के बच्चों के ज्यादातर बच्चों (98 फीसदी) के नाम स्कूल में दर्ज हैं और वे स्कूल जाते हैं। इसके विपरीत 12 से 16 आयुवर्ग के कई बच्चे या तो प्रारंभिक स्कूल छोड़ चुके थे या उनका नाम कभी स्कूल में दर्ज नहीं हुआ।

स्कूलों की हालत और वहां का रवैया

हालांकि 6 से 11 साल के बीच के ज्यादातर बच्चे स्कूलों में हैं, स्कूल ठीक से नहीं चल रहे हैं। दोनों सरकारी स्कूलों में शिक्षक और बच्चे दोनों बहुत गैरहाजिर रहते हैं। ज्यादातर बच्चे (59.68 फीसदी) महीने में सिर्फ 2–3 सप्ताह ही स्कूल आते हैं और करीब 16.12 फीसदी बच्चे महीने में 1–2 सप्ताह ही स्कूल आते हैं। ज्यादातर बच्चों (77.42 फीसदी) ने बताया कि वे समय पर स्कूल आते है।

हालांकि बरनी का स्कूल 1965 में स्थापित हुआ था और आगे चलकर इसमें मिडिल स्कूल शामिल हो गया पर इसमें सिर्फ दो कमरे हैं जिनमें कक्षा एक–पांच लगना है। तीन शिक्षिकाएं स्कूल में भेजी गयी हैं। बरनी स्कूल में बच्चों की कुल संख्या 1995 में 42 थी पर 1999 में वह 34 रह गयी है। हो सकता है कि यह कम बच्चे होने और छोटे परिवार होने के कारण जनसंख्या में आए बदलाव के कारण हो। हालांकि बरनी स्कूल में लड़कियों का कुल अनुपात ऊंचा है पर हमारी शोध से पता चलता है कि हर कक्षा में लड़कियों की संख्या कम होती जाती है। 1995 में जो 10 लड़कियों ने दाखिला लिया था, उनमें से 1999 में अभी स्कूल में हैं। पर, मिडिल स्कूल स्तर पर, आंकड़े बताते हैं कि 1998 और 1999 के बीच किसी लड़की ने स्कूल नहीं छोड़ा। बरनी में स्कूल के काम करने के दिनों में भी 1995 और 1998 के बीच कमी हुई है। जबकि स्कूल 1995 में 242 दिन खुला, वह 1996 में 237 दिन, 1997 में 209 दिन और 1998 में 218 दिन खुला।

पुश्या का स्कूल जिसमें मुख्यतः अनुसूचित जाति के परिवारों के बच्चे हैं, सबसे ज्यादा निष्क्रिय था। वह न सिर्फ बहुत लम्बे समय तक बन्द था बल्कि शिक्षकों के अकसर गैरहाजिर रहने के कारण भी छात्र स्कूल से गैरहाजिर रहते थे। हर दिन स्कूल से बहुत से बच्चे (30–40 फीसदी) गैरहाजिर ररहते थे। पालकों ने स्कूल से संबंधित कई समस्याओं के बारे में बताया। वह स्कूल

ठीक से नहीं चल रहा था और वहां या तो बिलकुल पढ़ाई नहीं होती थी या बहुत कम होती थी। परिणामस्वरूप, पिछले चार सालों में (1995–1999) बच्चों की संख्या बहुत कम याने 30 थी। 1995–1999 के दौरान, स्कूल में लड़कियों का अनुपात लड़कों की तुलना में कम था। ज्यादातर बच्चों को 5 वीं कक्षा के बाद स्कूल से हटा लिया जाता है।

कुतिका में जो गैर सरकारी संस्था (एन जी ओ) का स्कूल है वह दो सरकारी स्कूलों से एकदम हटकर है। हालांकि एक एन.जी.ओ. ने एक स्कूल स्थापित करने के विचार की पहल की थी पर यह स्कूल गांव के निवासियों के चन्दे और सक्रिय सहयोग से स्थापित किया गया था। एन.जी.ओ. के स्कूल के लिए जमीन गांव द्वारा दान में दी गयी थी और गांव के निवासियों ने स्कूल बनाने के लिए श्रमदान भी दिया था। इसमें 3 कमरे हैं जिनमें के जी से कक्षा 5 तक की कक्षाएं लगती हैं। इस स्कूल में 4 शिक्षक (2 पुरुष और 2 स्त्रियां) हैं जिनमें से ज्यादातर पास के गांवों के हैं। सिर्फ एक शिक्षक ग्रेजुएट है और उसके पास शिक्षा की डिग्री है और बाकी शिक्षक इन्टरमीजिएट तक पढ़े हैं। 1999 में इस स्कूल में 58 छात्र थे। उनमें से ज्यादातर गैर अनुसूचित जाति वर्ग के थे। अनुसूचित जाति के बच्चों में ज्यादातर लड़कियां हैं और गैर अनुसूचित जाति वर्ग में लड़कों और लड़कियों की संख्या करीब करीब बराबर थी।

चूंकि पड़ोस के सरकारी स्कूल निष्क्रिय हैं, माता–पिता अपने बच्चों को एन जी ओ के स्कूल में भेज रहे हैं, हालांकि उन्हें वहां सालाना फीस देना पड़ती है।[9] इस स्कूल में शौचालय या पुस्तकालय नहीं हैं। पर इन्हें बनाने की योजना है।

9. स्कूल की सालाना फीस इस प्रकार है– लोअर के. जी केस लिए 75 रुपये, पहली कक्षा के लिए 100 रुपये, दूसरी कक्षा के लिए 120 रुपये, तीसरी कक्षा के लिए 135 रुपये, चौथी कक्षा के लिए 150 रुपये और पांचवीं कक्षा के लिए 160 रुपये।

राज्य और स्कूल

तीनों गांवों के अध्ययन से जो सबसे ज्यादा परेशान करने वाला मुद्दा सामने आया वह यह था कि सरकार इन स्कूलों को ठीक से चला पाने में एकदमत असफल सिद्ध हो रही थी। ज्यादा ठीक से सकहा जाय तो राज्य ने इस बात की कोई गंभीर कोशिश नहीं की कि बच्चे स्कूल में बने रहें और स्कूल की पढ़ाई पूरी होने के बाद सीखने का अपेक्षित स्तर पा लें।

यहां तक कि राज्य की प्रोत्साहन की बुनियादी योजनाएं है उन पर भी ठीक से अमल नहीं होता। उदाहरण के लिए पिछले 6 सालों से स्कूलों को सीखने–सिखाने की कोई सामग्री नहीं दी गयी है। स्कूलों के पास सही ढंग की कक्षाएं, खेलकूद की सामग्री या शौचालय की सुविधाएं नहीं हैं। यहां तक कि विशेष योजनाओं पर ठीक से अमल नहीं होता। उदाहरण के लिए, अनाज वितरण के कार्यक्रम में (जिसमें बच्चों को हर माह 3 किलो चावल मिलता है) अनाज का आवण्टन नियमित नहीं है और कभी कभी तो यह 6–7 माह तक नहीं मिलता। 1999 में अनाज सिर्फ 3–4 माह तक ही अनाज बंटा। माता–पिता भी अनाज के घटिया होने की शिकायत करते हैं। इसी तरह जो पाठ्यपुस्तकें बच्चों को मुफ्त में मिलना चाहिए वे समय पर नहीं बांटी जातीं और 1998 में पुस्तकें देना अचानक बन्द कर दिया गया। किताबों का प्रदाय अनियमित है और किताबों को एक भी पूरा सैट नहीं मिला। स्कूलों में बच्चों के स्वास्थ्य की नियमित जांच नहीं होती। यह चिन्ता का विषय है क्योंकि अध्ययन से पता चला है कि बच्चों का एक बड़ा अनुपात (41.92 फीसदी) को कई तरह के रोगों से पीड़ित है।

अनुसूचित जाति और पिछड़ी जातियों के बच्चों को जो फीस माफी की सुविधा है उसमें सभी जरूरतमन्द बच्चे नहीं आ पाते। इसलिए शिक्षक अपने विवेक से सबसे ज्यादा जरूरतमन्द बच्चों को चुनते हैं। शिक्षकों के अनुसार दोपहर के भोजन से बच्चों की हाजिरी पर अनुकूल असर पड़ा है लेकिन दोपहर का भोजन 1999 के बाद बन्द हो गया।

अनुसूचित जाति/जनजाति के बच्चों को 100–150 रुपयों की छात्रवृत्ति कक्षा 5 तक मिलती है और उनकी फीस भी माफ रहती है। लेकिन छात्रवृत्ति उन सब बच्चों को नहीं मिल पाती जिन्हें आर्थिक सहायता की जरूरत है। स्कूलों में एक सामान्य फण्ड होता हैं जिससे चाक और दूसरी शैक्षिक सामग्री खरीदी जाती है। इस फण्ड के लिए जो बच्चे अपना हिस्सा देने की हैसियत नहीं रखते उनके बदले शिक्षक 10 पैसे प्रति बच्चे के हिसाब से पैसा एकत्र करते हैं। कुछ शिक्षकों ने बताया कि कुछ वर्गों के बच्चों को सरकार द्वारा प्रोत्साहन के रूप में सहायता दिये जाने से छात्रों में भेदभाव की भावना पैदा होती है। सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा दिये जाने के बारे में सरकार के दावे के विपरीत स्थिति यह है कि परिवारों को अपने बच्चों को स्कूली शिक्षा देने के लिए खर्च करना पड़ता है। जिन 62 बच्चों का साक्षात्कार लिया गया उनमें से 40 (57 फीसदी) बच्चे 21 रुपये से लेकर 25 रुपये तक सालाना फीस देते हैं। 18 बच्चों ने बताया कि वे स्कूल की फीस के रूप समें हर साल 50 रुपये खर्च करते हैं। ज्यादातर बच्चों को अपनी शिक्षा के लिए दूसरे खर्च भी करने पड़ते हैं। जबकि 32 फीसदी बच्चों ने 100 रुपये से कम खर्च किया, ज्यादातर बच्चों ने (59.68 फीसदी) ने 100–500 रुपये खर्च किया। तीन बच्चों ने तो अपनी शिक्षा पर 500–1000 रुपये खर्च किया। ये खर्च बस्ता, किताबें, पैन और दूसरी लेखन सामग्री खरीदने में किया गया था।

सरकारी नियम और प्रारम्भिक शिक्षा का प्रशासन न होने का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि ब्लाक के सभी स्कूलों के लिए एक ही निरीक्षक है। परिणामस्वरूप स्कूलों का नियमित रूप से और ठीक से निरीक्षण नहीं हो पाता। कई शिक्षकों और पालकों ने पाया कि स्कूलों का निरीक्षण कभी कभार ही होता है और शिक्षकों को सीमित सहयोग ही मिल पाता है।

समुदाय और स्कूल के रिश्ते

हालांकि बुनियादी शिक्षा की मांग बहुत है, स्कूल के लिए समुदाय का वास्तविक सहयोग सीमित है और एक सा नहीं है। कहीं कहीं, जैसे कुतिका में लोग अपने बच्चों की शिक्षा के लिए सहयोग राशि देना चाहते हैं। एक मां का यह कथन कि 'स्कूल तो हमारा है, हमारे बच्चों का भविष्य ही तो सुधार रहा है'' जाहिर करता है कि स्कूलों के प्रति लोगों का नजरिया सकारात्मक है।

लेकिन अलग–अलग लोग स्कूल के कामकाज में रुचि लेने की कितनी योग्यता रखते हैं इसमें जाति के आधार पर अन्तर है। ऊंची जाति के माता–पिता तो स्कूल के बारे में और वहां के हालात के बारे में ज्यादा मुखर हैं और जोर देकर अपनी बात कहते हैं। लेकिन अनसूचित जाति के सदस्य स्कूल की प्रणाली के खिलाफ आलोचना करने में सकुचाते हैं और नीचे वर्ग की जातियों के माता–पिता स्कूल जाने में और शिक्षकों से मुलाकात करने में हिचकते हैं।

कई माता–पिता स्कूल से संबंध रखने के इच्छुक भी नहीं हैं। करीब–करीब आधे पिताओं (48.39 फीसदी)– लड़कियों के नहीं खासकर लड़कों के पिता– ने अपने बच्चों के स्कूल का भ्रमण किया है। एक बच्चे को छोड़कर किसी भी बच्चे की मां ने स्कूल का भ्रमण नहीं किया। इसी तरह ज्यादातर (82.26 फीसदी) पिताओं ने पालक–शिक्षक बैठकों में गए थे लेकिन कोई भी मां उसमें नहीं गयी। पिताओं और माताओं की यह जुड़ाव यह नहीं बताता कि स्त्रियों या माताओं की शिक्षा में रुचि कम हैं। बल्कि इससे रुचियों और गतिविधियों में लिंगभेद की बात जाहिर होती हैं और यह उस लम्बे इतिहास पर रोशनी डालती है जिसमें स्त्रियों को शिक्षा से दूर रखा गया है। हालांकि यह सच है कि माताएं अकसर स्कूल का भ्रमण नहीं करतीं, वे स्कूलों की हालत के बारे में और बच्चों के लिए शिक्षा कीस जरूरत के बारे में खुलकर बोलती हैं।

पंचायत और स्कूल

शिक्षा के प्रबंधन के विकेन्द्रीकरण पर जो नया जोर दिया जा रहा है उसके मद्देनजर पंचायतों से उम्मीद की जाती है कि वे इस बात में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करें कि स्कूल प्रभावी ढंग से चलें। लेकिन इन चुने हुए प्रतिनिधियों और समुदाय के सदस्यों को प्रोत्साहन देने की कोई व्यवस्था नहीं है और उन्हें समय समय पर प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता इसका मतलब यह निकलता है कि स्कूलों के प्रबंधन के अधिकार का इस्तेमाल नहीं किया जाता।

जैसा कि कई ग्रामीणों ने बताया, पंचायत की शिक्षा में रुचि नहीं है क्योंकि इस मुद्दे को अकसर हाशिये पर डाल दिया जाता है और सड़कें बनाने और पानी का इन्तजाम करने की तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाता है। इसके अलावा कुछ माता–पिता ने बताया कि पंचायतों के नेता अपढ़ होते हैं इसलिए वे स्कूल से संबंधित मुद्दों को हल नहीं कर पाते। कुछ इलाकों में, जैसे कि कुतिका में, पंचायत ने जमीन, श्रम और चीजें दी हैं। लेकिन दूसरे दो गांवों में, पंचायत स्कूल की सहायता नहीं करती, सिर्फ त्यौहारों में वह बच्चों को मिठाई बांटती है।

एक मुद्दा जो विवादास्पद है वह है समुदाय के प्रति शिक्षकों की जवाबदेही। हालांकि इस बात की शिकायत है कि सरकारी स्कूलों के शिक्षक बहुत गैरहाजिर रहते हैं और ये स्कूल ठीक से चलते नहीं हैं, पर पंचायतें शायद ही कभी अपने अधिकार का उपयोग करती हैं और कार्यवाही करती हैं। पर पंचायत सदस्यों द्वारा हस्तक्षेप किये जाने के कुछ उदाहरण हैं, जैसे पुश्या के पंच ने एक कामचोर शिक्षक के खिलाफ शिकायत की थी। पंचायत और समुदाय कुछ ऐसा नहीं कर पा रही हैं कि स्कूल ठीक से चलें।

गांवों के कई निवासियों ने महसूस किया कि शिक्षा के मुद्दों पर पंचायतें प्रभावी नही हो पा रही हैं। इसका संबंध इस बात से है कि पंचायतें पूरी तरह

स्वशासी निकायों के रूप में काम नहीं कर पा रही है। पंचायत सदस्य खुद बताते हैं कि विकेन्द्रीकरण एक हकीकत नहीं है और प्रणाली अभी भी नौकरशाही वाली है। हालांकि पंचायत का ढांचा मौजूद है और लोग पंचायतों में चुने जाते हैं पर उनका स्कूलों पर और उसके कामकाज पर कोई नियंत्रण नहीं है। माता–पिता यह महसूस करते हैं कि समुदाय तभी स्कूल पर नियंत्रण रख सकेगा जब स्कूलो के कामकाज नियमित करने के पंचायत के अधिकार को स्वीकार किया जाएगा और समुदाय के सक्रिय होने के लिए ज्यादा प्रभावी और नियमित सरकारी सहयोग मिलेगा।

पंचायत के अलावा, ग्राम शिक्षा समिति भी होती है जिसकी बैठक हर माह होना चाहिए। लेकिन वह इन तीनों गांवों में काम नहीं कर रही है। जैसा कि कई ग्रामीणों ने बताया, उन्हें शायद ही कभी ग्राम शिक्षा समिति की गतिविधियों के बारे में बताया जाता है। कई लोगों को तो यह भी नहीं मालूम कि पालक शिक्षक बैठकें ग्राम शिक्षा समिति की बैठकों से भिन्न हैं।

स्कूल और समुदाय का समयचक्र

स्कूलों के प्रशासन में एक खास मुद्दा यह है कि स्कूल के समयचक्र और समुदाय के काम और त्यौहारों के समयचक्र में कोई तालमेल नहीं है। स्कूल का समयचक्र जून से शुरू होता है और यह समुदाय के उस समयचक्रसे टकराता है जब छोटे बच्चों की सहायता की भी जरूरत होती हैं। इस प्रकार जब खेती का काम शिखर पर होता है तब बहुत ज्यादा बच्चे स्कूलों से गैरहाजिर रहते हैं। उदाहरण के लिए, मानसून के बाद के समय में रोपा लगाने और फसल, खासकर अदरक, भुट्टे और गेहूं, की कटाई में बच्चों की सहायता की जरूरत होती है। फिर भी स्कूल केलेण्डर स्थानीय समयचक्र में बच्चों के समायोजन की इजाजत नहीं देता और इसलिए माता–पिता और बच्चों में तनाव पैदा होता है और छात्रों की गैरहाजिरी को लेकर शिक्षकों से अनबन पैदा होती है। अनुसूचित जाति के परिवारों और

छोटे परिवारों के बच्चों में गैरहाजिरी की समस्या ज्यादा रहती है क्योंकि वे फसल कटने और बुवाई के समय खेती के काम में लगा दिये जाते हैं। समुदाय के कुछ त्यौहारों के दौरान भी बच्चे स्कूल से ज्यादा गैरहाजिर रहते हैं। इन त्यौहारों की उपेक्षा भी स्कूली समयचक्र में की गयी है। उदाहरण के लिए जौनपुर में हर माह संक्रान्ति मनाई जाती है और इन दिनों या तो स्कूल अनौपचारिक रूप से बन्द रहते हैं या फिर शिक्षक और छात्र दोनों काफी तादाद में गैरहाजिर रहते हैं। दूसरी तरफ, शिवरात्रि,स जन्माष्टमी, रक्षा बंधन, होली (जो देश केस दूसरे भागों में मनाए जाते हैं) जौनपुर में नहीं मनाए जाते, लेकिन उन दिनों स्कूल सरकारी तौर से बन्द रहते हैं। इस प्रकार, स्थानीय जरूरतों और सरकारी नीतियों में तालमेल न होने के कारण स्कूल के काम करने के दिन कम हो गए हैं।

शिक्षक : समस्याएं, रुख और समुदाय के साथ रिश्ता

शिक्षा प्रणाली में खास भूमिका अदा करने वाले के रूप में शिक्षक, उनकी समस्याएं, उनका रुख, और समुदाय के साथ रिश्ते, स्कूलों के कामकाज के लिए महत्वपूर्ण हैं। सरकारी स्कूलों के शिक्षकों में से ज्यादातर शिक्षक न तो उस गांव के होते हैं और न उस इलाके के, जिन इलाकों में उन्हें भेजा जाता है । कई शिक्षक अपने परिवारों के साथ कस्बों में रहते है और उनके बच्चे या तो निजी स्कूलों में पढ़ते हैं या हाई स्कूलों में। यहां तक कि, जो शिक्षक गांवों में रहते हैं अकसर सप्ताहान्त में या अवकाश के दिनों में कस्बे में आते रहते हैं। जैसा कि कई माता–पिता बताते हैं, और जैसा कि शोधकर्ता ने देखा, शिक्षकों में अपने छुट्टी के दिनों को बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है और वे अकसर गांव से गैरहाजिर रहते हैं। परिणाम यह होता है कि शिक्षकों की गैरहाजिरी ज्यादा होती है और यहीं कारण है कि माता–पिता महसूस करते हैं कि शिक्षकों में जिम्मेदारी की भावना की कमी है।

फिर भी गांवों में शिक्षकों की जिन्दगी सरल नहीं है। जो शिक्षक उसी गांव में

रहते हैं जहां कि वे पढ़ाते है, वे कई समस्याओं के बारे में बताते हैं, जैसे अच्छे घर और पानी की कमी। हालांकि वे समुदाय के सहयोगी स्वभाव को मानते हैं, पर वे गांव में रहना नहीं चाहते और कोई 'बेहतर' जगह तबादले की उम्मीद करते हैं। गैर सरकारी स्कूल में, हालांकि शिक्षक दूसरे गांवों के होते हैं, उनकी नियुक्ति की शर्त यह होती हे कि वे स्कूल के पास ही रहेंगे। इस कारण इन स्कूलों में शिक्षकों की उपस्थिति ज्यादा होती है।

प्रशिक्षण : जिन सरकारी स्कूलों का अध्ययन किया गया उनके ज्यादातर शिक्षकों ने इन्टरमीडिएट परीक्षा पास कर ली है और बेसिक कोर्स (बी.टी.सी.) किया है। उन्हें सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हैं एक परीक्षा के आधार पर भरती क्रम से की जाती है। बी.टी.सी. के बाद शिक्षक सिर्फ दो प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। भरती के इस तरीके से कई समस्याएं पैदा हुई है। उदाहरण के लिए शिक्षक मल्टीग्रेड शिक्षण में प्रशिक्षित किये जाते हैंस हालांकि उनमें से सभी को सरकारी स्कूलों में मल्टीग्रेड शिक्षण का काम दिया जाता है। फल यह होता हैं कि वे कई कक्षाओं को प्रभावी तरीके से नहीं देख पाते। अव्यवस्थित कक्षाएं और बच्चों की सफलता का नीचा स्तर का कारण शिक्षक प्रशिक्षण में मौजूद यह कमी हो सकती है।

दूसरी तरफ गैरसरकारी स्कूल में जो स्थिति है वह बताती है कि शिक्षकों को यदि ठीक और प्रासंगिक प्रशिक्षण दिया जाय तो ऐसी समस्याओं का हल निकल सकता हैं। गैरसरकारी स्कूल में सिर्फ एक ही स्नातक है और उसके पास शिक्षा की अतिरिक्त उपाधि है और दूसरे तीनों ने सिर्फ इन्टरमीडिएट स्तर तक शिक्षा ही पायी है। फिर भी, चूंकि उनके प्रशिक्षण में इस बात पर जोर था कि वे बच्चों पर ज्यादा ध्यान दें और बच्चों और माता–पिता को ज्यादा सरलता से उपलब्ध रहें, इसलिए उन्हें ज्यादा भरोसेमन्द और जिम्मेदार होने की प्रतिष्ठा मिली है।

सरकारी स्कूलों के ज्यादातर शिक्षक मौजूदा बुनियादी शिक्षा पाठ्यक्रम को

जीवन से अप्रासंगिक मानते हैं। वे कहते हैं कि व्यावसायिक प्रशिक्षण या कौशल का प्रशिक्षण नहीं है और कहते हैं कि चूकि स्थानीय ज्ञान को शामिल नहीं किया गया हैं इसलिए माता–पिता इस शिक्षा को आकर्षक नहीं पाते। शिक्षकों ने बताया कि बच्चों की योग्यता को वस्तुपरक ढंग से परखने के लिए बाहरी परीक्षा की जरूरत हैं। उन्होंने यह भी बताया कि सरकार को चाहिए कि वह उनके काम को मान्यता दे।

ज्यादातर शिक्षक प्राथमिक शिक्षक संघ (राज्य का शिक्षक संगठन) के सदस्य हैं, जो शिक्षकों की प्रशासकीय परेशानियों का हल करता है। लेकिन कोई भी शिक्षक ऐसे शिक्षक संघों का सदस्य नहीं है जो शिक्षण के लिए उनका कौशल और नजरिया सुधारने पर ध्यान देते हैं। कोई भी शिक्षक ऐसे समूहों का सदस्य नहीं था जो शिक्षाशास्त्र या नयी शिक्षण सामग्री को विकसित करने के बारे में विचार करते हैं।

हालांकि शिक्षकों और शिक्षा विभाग के बीच रिश्ते ठीक दिखते है और शिक्षकों का ख्याल है कि प्रशासन का रुख सहयोगपूर्ण है, पर ऐसी कई बातें हैं जिनकी अपेक्षा शिक्षक प्रशासन से करते हैं। शिक्षक इस बात से परेशान हैं कि सरकार अपने स्कूलों के प्रति उदासीन है। हालांकि स्कूलों को मरम्मत की, बैठने के लिए फर्नीचर और पटियों की, ब्लैकबोर्ड और पढ़ने–पढ़ाने की दूसरी सामग्री की जरूरत है लेकिन सरकार ये चीजें उपलब्ध नहीं कराती। प्रशासन से ज्यादा सहयोग का उल्लेख करते हुए शिक्षक कहते हैं कि शिक्षक चाहते हैं कि सरकार को चाहिए कि वह पर्याप्त तादाद में पुस्तकों और वर्दियों का इन्तजाम करे और शिक्षा के लिए फीस न ले और दोपहर के भोजन की व्यवस्था करे। उनका ख्याल हैं कि इससे आर्थिक रूप से गरीब माता–पिता अपने बच्चों को स्कूल भेज सकेंगे और इससे स्कूल ज्यादा अच्छी तरह से काम करेंगे। शिक्षक इन बातों को स्कूल के चलने के लिए जरूरी तो बताते हैं पर वे अपने खुद के योगदान के महत्व पर न तो ध्यान देते है और न उसे मानते हैं। अपनी खुद की भूमिका को बताने में वे असफल

तो रहते हैं ही, इसके अलावा बच्चों के माता–पिता और उनकी संस्कृति के प्रति उनका रवैया नकारात्मक रहता है। इससे उलझन और बढ़ जाती है।

बच्चों और माता–पिता के साथ शिक्षकों के रिश्ते

चूंकि ज्यादातर शिक्षकों की सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि गांव के निवासियों और स्कूल के बच्चों से भिन्न है इसलिए उनके बीच कुछ दूरी यहां तक कि वैमनस्य है। कामगार और गरीब माता–पिता की सांस्कृतिक, समस्याएं और जिन्दगी के हालात की समझ न होने के कारण कई शिक्षक यह मानते हैं कि बच्चे पढ़ाई में ज्यादा कुछ नहीं कर पा रहे हैं इसके लिए उनके माता–पिता ही जिम्मेदार हैं। पिताओं को ज्यादा दोषी माना जाता है, क्योंकि उनमें से ज्यादातर पढ़े लिखे है और फिर भी वे अपने बच्चों की पढ़ाई की तरफ ध्यान नहीं देते। दो सरकारी स्कूलों में शिक्षकों का कहना है कि बच्चों के माता–पिता का जुड़ाव बच्चों की शिक्षा सेस बहुत कम है। उन्होंने बच्चों की असफलता और स्कूलों की हालत का दोष बड़े परिवारों को भी दिया। शिक्षकों ने यह भी शिकायत की कि बच्चों की रोजमर्रा की स्कूली जरूरतों के प्रति माता–पिता उदासीन हैं और माता–पिता और शिक्षकों की बैठकों में हाजिरी कम रहती है।

शिक्षकों में माता–पिता के नजरियों, समस्याओं और रोज के संघर्ष की समझ कम ही होती है। कभी–कभी उनके मन में गांव के लोगों के प्रति गहरे पूर्वाग्रह होते हैं। एक शिक्षक के अनुसार, "पहाड़ों के लोगों में कम बुद्धि होती है और उनके खून में शराब होती है।" शिक्षकों का यह भी ख्याल है कि "मैदानों के लोगों के विपरीत पहाड़ों के औरत और मर्द दोनों शराब पीते हैं और अपने बच्चों का ख्याल नहीं रखते।" "जंगल के लोग पिछड़े हैं। वे अंधविश्वासी है और अपनी बीमारी की समस्या के हल के लिए वे जादू टोना का सहारा लेते हैं।" दूसरी शिकायत यह है कि माता–पिता अपने छोटे बच्चों को भी स्कूल भेज देते हैं जिससे दूसरे बच्चों को पढ़ाते समय समस्या पैदा

होती है। उनका यह भी ख्याल है कि माता–पिता अपने बच्चों की देखभाल और उनकी शिक्षा की जिम्मेदारी के प्रति लापरवाह हैं। शिक्षकों ने बताया कि माता–पिता अपने बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति भी लापरवाह हैं और बच्चों के गृहकार्य का निरीक्षण नहीं करते और ठीक हैसियत होने के बावजूद नियमित रूप से फीस नहीं चुकाते। माता–पिता बच्चों का उपयोग दूसरी गतिविधियों समें भी करते हैं जिससे कि वे स्कूल नहीं आ पाते। शिक्षकों के अनुसार माता–पिता बच्चों के कल्याण की पूरी जिम्मेदारी शिक्षकों पर डाल देते हैं। लेकिन माता–पिता बच्चों को घर में उपयुक्त वातावरण नहीं दे पाते जिससे कि बच्चे कमजोर रह जाते हैं और उनहें पढ़ाना कठिन हो जाता है। शिक्षकों का यह भी ख्याल है कि माता–पिता अपने बच्चों के लिए आदर्श पेश नहीं करते क्योंकि "वे अपने बच्चों के सामने लड़ते हैं और तम्बाकू खाते हैं।" एक शिक्षक का कहना था, 'माता–पिता बच्चों के सामने किसी भी चीज का परदा नहीं रखते।' माता–पिता शायद ही कभी यह बात पूछते हैं कि उनका बच्चा स्कूल में कैसा पढ़ रहा हैं।

हालांकि ज्यादातर (75.81 फीसदी) शिक्षक बच्चों के घर गए हैं, पर ऐसा लगता है कि शिक्षकों और बच्चों तथा उनके माता–पिता के बीच संवाद की कमी हैं। शिक्षक इस खाई को नहीं भर सके हैं और माता–पिता यह मानते हैं कि स्कूल अपने काम में घटिया होते जा रहे हैं। इन दोनों कारणों से माता–पिता शिक्षकों के विरोधी हो गए हैं।

कक्षा का माहौल

स्कूलों के कामकाज को, शिक्षासंबंधी आदान प्रदान, शिक्षक और छात्रों के संबंधों को और कक्षा के भीतर के दूसरी ताकतो को समझने के लिए शोधकर्ता ने दोनों चुने हुए दोनों सरकारी स्कूलों की विभिन्न कक्षाओं का कुछ समय तक अवलोकन किया जिससे वे यह समझ सकें कि माता–पिता और बच्चों को सरकारी स्कूलों की प्रणाली से इतनी शिकायतें क्यों हैं। इन

अवलोकनों के आधार पर कक्षाओं की और पढ़ाने–पढ़ने के हालात की नीचे लिखी विशेषताएं सामने आयीं।

1. चूंकि ज्यादातर कक्षाएं एक साथ बैठती हैं, जिन कक्षाओं में पढ़ाई नहीं होती वे अकसर पूरी तरह अव्यवस्थित हो जाती हैं। बच्चों का ध्यान बंट जाता हैं, वे आपस में बात करते हैं और झगड़ते हैं और उन्हें किसी रुचिकर गतिविधि में नहीं लगाया जाता।
2. ज्यादातर शिक्षक ज्यादा कक्षाओं को एक साथ नहीं चला पाते और हर कक्षा को 20–25 मिनट ही पढ़ाया जाता है।
3. शिक्षक अकसर शारीरिक दण्ड देते हैं। उम्मीद के अनुसार न लिखने पर, सही जवाब न देने पर,, बच्चों के आपस में लड़ने पर ऐसा दण्ड मिलता है।
4. बच्चों से अकसर यह उम्मीद की जाती है कि जब शिक्षक दूसरी कक्षा को पढ़ाएं तो बच्चे खुद ही काम करें। अकसर बच्चों से कहा जाता है कि "किताब से पाठ कमांक ..... अध्याय ..... पढ़ो, किताब में से नोट्स लो या चित्र की नकल करो।"
5. बच्चों को 'बुद्धू" कहना और बच्चों का मजाक उड़ाना शिक्षकों के लिए असामान्य बात नहीं है।
6. बच्चों से उम्मीद की जाती है कि लड़कियां और लड़के अलग अलग पंक्तियों में बैठें और अनुसूचित जाति के बच्चे अलग बैठें।
7. शिक्षक आपस में बात करने में काफी समय बिताते हैं और बच्चों को यों ही छोड़ देते हैं।

शिक्षक मुद्दों और विचारों के बारे में बच्चों को बता नहीं पाते और न उनकी तरफ बच्चों का ध्यान खींच पाते हैं।

सरकारी स्कूल में आधा दिन

सुबह के पौने दस बजे हैं और बच्चे स्कूल के मैदान में खेल रहे हैं। दो में से सिर्फ एक ही शिक्षक स्कूल पहुंचते हैं और उन्हें देखकर बच्चे अपना खेल बन्द कर देते हैं और स्कूल के पास की खुली जगह पर बैठने के लिए दौड़ पड़ते हैं। सभी कक्षाओं के बच्चे साथ में बैठते हैं। बिना किसी प्रार्थना के बच्चे अपनी किताबों और/या स्लेटों को लेकर तैयार हो जाते हैं। शिक्षक उन्हें शान्त होने के लिए कहते हैं और हाजिरी लेते हैं। इसके बाद वे बच्चों को अपनी किताब पढ़ने के लिए कहते हैं और खुद अपनी किताब पढ़ने लगते हैं कुछ समय के बाद, बच्चों का ध्यान पढ़ाई से हट जाता है और वे आपस में बतियाने और खेलने लगते हैं। कुछ समय के बाद उन्हें कहते है कि वे अपनी किताब से एक निबंध लिखें। सिर्फ कुछ ही बच्चे अपना काम शिक्षक को बताते हैं। शिक्षक दूसरे बच्चों को बुलाकर यह नहीं पूछते कि उन्होंनें क्या किया है। 12 बजे भोजन का समय होस जाता है और जो बच्चे पास ही रहते हैं वे भोजन करने के लिए अपने घर चले जाते हैं। दूसरे बच्चे स्कूल के वाराण्डे में भोजन करते हैं और फिर खेलने लगते हैं।

शिक्षकों और स्कूली शिक्षा के बारे में माता–पिता का आकलन

कई माता–पिता ने कहा कि सरकारी शिक्षकों को पढ़ाने की अपनी योग्यता के बारे में आत्मविश्वास नहीं है। जैसा कि पुश्या के एक पालक ने बताया, ''आज टीचर्स 'टीचर्स' कहने के लायक ही नहीं है, शिक्षकों के अन्दर शिक्षा देने की भावना है ही नहीं।'' कुछ माता–पिता ने एक शिक्षक का उदाहरण दिया जिसे यह भी पता नहीं था कि '26जनवरी' कब मनाना चाहिए। माता–पिता इस बात से नाखुश थे कि शिक्षक बच्चों को उनके आसपास के वातावरण के बारे में नहीं पढ़ाते क्योंकि यह उनके पाठ्यक्रम में नहीं है। और शिक्षक भी इस ज्ञान को महत्व का मानते हैं। कई माता–पिता इस बात से चिंतित थे कि उनके बच्चों की सीखने की गति बहुत कम होस गयी है। सरकारी स्कूलों में पढ़ाई नहीं होती इस बात के सबूत के रूप मे बताया गया कि वे ठीक से पढ़ नहीं पाते, लिख नहीं पाते और अंग्रेजी नहीं बोल पाते और

पांचवीं कक्षा में होने पर भी 2 का पहाड़ा नहीं बोल पाते। एक पालक, जो अपनी गरीबी के बावजूद अपने बच्चों को स्कूल भेज रहा था, ने नाराजी जाहिर की उन्हें स्कूल में कुछ भी नहीं पढ़ाया गया हैं

सरकारी स्कूलों की बदतर हालत के लिए माता–पिता ने शिक्षकों को दोषी ठहराया। अपने मत के समर्थन में उन्होंने कई बातें बतायीं–

- शिक्षक अकसर स्कूल से गैरहाजिर रहते हैं और इसलिए बहुत कम पढ़ाई होती है या नहीं होती।
- शिक्षक समुदाय के प्रति जवाबदेह नहीं है और सरकार भी उनका निरीक्षण नहीं करती।
- कुछ शिक्षक स्कूल में अपने बच्चों से ही मतलब रखते हैं
- वे स्थानीय बोली जौनपुरी नहीं बोलते और गांव के निवासियों से घुलते–मिलते नहीं।
- उनके खुद के बच्चे उस स्कूल में नहीं पढ़ते।

महिला शिक्षकों की 'समस्या'

लड़कियां स्कूल पढ़ने के लिए स्कूल नहीं जातीं इस समस्या का निदान करने के लिए राज्य सरकार ने महिला शिक्षकों को बड़ी तादाद में नियुक्त करने की जो नीति अपनायी हैं उसका इस क्षेत्र पर मिलाजुला असर हुआ है। हालांकि महिला शिक्षकों की मौजूदगी से कई परिवारों को प्रोत्साहन मिला होगा के वे अपनी लड़कियों को स्कूल भेजें। पर समुदाय के कई लोग महिला शिक्षकों के प्रति पूर्वाग्रह रखते हैं। यह इस बात साफ है कि महिला शिक्षकों को 'लेडीज़' कहा जाता है जबकि पुरुष शिक्षकों को 'टीचर्स' कहा जाता है। समुदाय के सदस्य महिला शिक्षकों को एक समस्या मानते हैं क्योंकि वे अकसर गैरहाजिर रहती हैं, गांव में नहीं रहतीं और अच्छा नहीं पढ़ातीं। एक पिता ने कहा कि महिला शिक्षक पढ़ाने में रुचि नहीं रखतीं और तनख्वाह

लेने के लिए स्कूल आती हैं। कई वयस्कों के अनुसार महिला शिक्षक बुनाई जैसे निजी काम स्कूल के घण्टों में करती हैं। एक पालक इस बात से परेशान था कि तीन साल तक स्कूल जाने पर भी उसका बच्चा न तो पढ़ सकता है और न लिख सकता है। उसने कहा कि पुश्या क़ा स्कूल तो महिलाओं के कारण बरबाद हो गया है क्योंकि वे हमेशा छुट्टी पर रहती हैं।

स्कूल के कामकाज की आलोचना करने के साथ ही कई माता–पिता यह चाहते थे कि स्कूल के पाठ्यक्रम में स्थानीय ज्ञान और समुदाय और समाज से संबंधित मुद्दों को भी शामिल किया जाना चाहिए। पुश्या गांव के भीमसिंह नामक व्यक्ति ने कहा कि बच्चों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे स्थानीय बोली सीखें और अपने इलाके की खेती, पारिस्थितिकी, त्यौहार और संस्कृति के बारे में ज्यादा जानें। कई लोग इस बात पर जोर देते हैं कि ऐसी शिक्षा से बच्चे समुदाय से जुड़ेंगे और अपने इलाके में ठीक से जिन्दगी बसर कर सकेंगें। शिक्षा की गुणवत्ता और स्थानीय ज्ञान पर जोर दिये जाने के विचार का अंकुर राज्य के आन्दोलन के दौरान पैदा हुआ था और इस कारण भी ऐसा हुआ कि यह माना जानें लगा था कि सही तरीके की शिक्षा उनके अपने इलाके में टिकाऊ ढंग से जीवन यापन करने में सहायक होगी और उन्हें दूसरे इलाकों को पलायन नहीं करना होगा।

गैरसरकारी स्कूल का अनुभव दिखाता है कि स्थानीय शिक्षकों को भरती करने और स्थानीय समुदाय से संपर्क स्थापित करने से अच्छे, सक्रिय और संतोषजनक स्कूल स्थापित करने में संहायता मिलती है। जबकि सरकारी स्कूलों और शिक्षकों की बहुत आलोचना की जाती है, कुतिका के पालक गैरसरकारी स्कूल के शिक्षकों और उनके प्रयासों की न सिर्फ तारीफ करते हैं बल्कि इस बात से भी खुश हैं कि स्कूल के पाठ्यक्रम में स्थानीय ज्ञान शामिल किया गया है। इस स्कूल में बच्चों के पास उस इलाके के पौधों और पेड़ों को पहचानने की परियोजनाएं हैं बल्कि उन्हें खेती से संबंधित कई किस्म के कामों और जानकारी के बारे में बात करने के लिए भी प्रोत्साहित

किया जाता है। इस तरह के काम से माता–पिता को लगता है कि शिक्षा बच्चों को समुदाय से दूर करने का काम नहीं करती।

लड़कियां : काम और शिक्षा के अवसर

स्कूल ठीक से न चलने के लिए जिम्मेदार तत्वों, कम छात्रों की सफलताा और स्कूल तथा शिक्षा से समुदाय के असंतोष के अलावा समुदाय से संबंधित ऐसे तत्व भी हैं जो बेहतर और ज्यादा उचित बुनियादी शिक्षा उपलब्ध करने में पैदा होने वाली समस्याओं के लिए जिम्मेदार हैं। जैसे, लड़कियों को पराया धन समझा जाता है और इसलिए माता–पिता उनकी शिक्षा पर ज्यादा खर्च नहीं करना चाहते। हाल ही तक इस नजरिये के कारण माता–पिता अपनी लड़कियों का विवाह बिना बुनियादी शिक्षा दिये ही कर देते थे।

इसके अलावा ऐसे सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के अलावा, इलाके का आर्थिक ढांचा और परिस्थितियों ने लड़कियों और महिलाओं के ऊपर काम का भार डाल रखा है। उन्हें खेती के काम में लड़कों और मर्दों से बेहतर समझा जाता है। अध्ययन बताते है कि निचले हिमालयी इलाके में चारा और पानी लाने का काम मुख्य तौर पर अविवाहित लड़कियों को दिया जाता है।[10] चारा इकट्ठा करने में बहुत समय लगता है और यह खतरनाक भी होता है क्योंकि घास लाने के लिए सीधी ढलान पर चढ़ना होता हैं। हमारे अध्ययन से यह भी पता चला है कि हालांकि बच्चे अकसर गैरहाजिर रहते हैं क्योंकि उन्हें घर के कामकाज में सहायता देना होता है, पर लड़कियों को लड़कों की तुलना में ज्यादा मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। कई लड़कियों को बुवाई के समय सहायता करना पड़ता है, पक्षियों से फसल की रक्षा करना होता है और कटाई के समय वयस्कों की सहायता करना होता है।

10. चोपडा आर. और डी. घोष (2000) ''वर्क पैटर्न्स आफ रूरल वूमेन इन सेंट्रल इण्डिया''. इकानामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली. जिल्द 35 (52 और 53)

पर अब हालात बदल रहे हैं और कई लड़कियों को स्कूल भेजा जा रहा है। जबकि 20साल से ज्यादा उम्र की लड़कियों का ज्यादातर हिस्सा या तो कभी स्कूल नहीं गया या फिर कुछ साल बाद ही उसने पढ़ाई छोड़ दी हैं, 6 और 14 साल के बीच की ज्यादातर लड़कियों का नाम स्कूल में लिखा हैं और वे स्कूल जा रही हैं। जैसा कि कुतिका गांव के बचनसिंग का कहना है, "अब लड़का लड़की दोनों को समान समझकर पढ़ाया जा रहा है"।

स्कूली शिक्षा और काम

स्कूल और काम दोनों को लेकर चलना ज्यादातर बच्चों के लिए एक हकीकत बन गया है, खासकर उन बच्चों में जो गरीब परिवारों के हैं या छोटे परिवारों के हैं। यह पाया गया कि तीनों गांवों के ज्यादातर बच्चे स्कूल के घण्टों के बाद कई तरह की गतिविधियों में लगे रहते हैं। जिन बच्चों का साक्षात्कार लिया गया उनमें से आधे से ज्यादा बच्चे (58.06 फीसदी) घर में उत्पादन की गतिविधियों में लगे रहते हैं और औसतन दो घण्टे रोज घर के कामकाज में लगाते है इसमें मक्का को सुखाना और उनके दाने निकालना, फसल की कटाई और अदरक की सफाई, अनाज कूटना और उसे साफ करना, खेत की सफाई और हरी फल्लियों को छीलना आदि शामिल है।

बच्चे, खासकर छोटे परिवारों के बच्चे भी कई किस्म के घरू काम करते हैं जैसे छोटे बच्चों की देखभाल, ढोर चराना, पानी, ईंधन और गोबर लाना। दो बच्चे अनाज की सफाई करने और राशन का सामान खरीदने /दूकान से खरीददारी करने में लगे थे। इन कामों में लिंग के आधार पर भेद था। खाना पकाने और कपड़े घोने का काम सिर्फ लड़कियां ही करती थीं (हालांकि एक बच्चे को घर में खाना पकाना पड़ता था)। लड़कियों से ज्यादा लड़के ढोर चराते थे। यह आश्चर्य की बात है कि छोटे बच्चों की देखभाल का काम लड़के और लड़कियां दोनों के द्वारा किया जाता था। कई बच्चों के स्कूल से गैरहाजिर रहने या देर से स्कूल आने का एक कारण काम का यह भार भी

है। इन संदर्भों में शिक्षक बच्चों की गैरहाजिरी ज्यादा होने का जिम्मेदार माता–पिता को ठहराते हैं।

निष्कर्ष

जौनपुर के निवासियों द्वारा प्रासंगिक और बेहतर प्रारंभिक शिक्षा की मांग के पीछे यह विचार है कि ऐसा होने से उन्हें फिर से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वायत्तता हासिल होगी और उनकी जिंदगी के हालात सुधरेंगे। शिक्षा के प्रति ज्यादा झुकाव होने से उन्होंने लड़कियों के प्रति अपने पूर्वाग्रहों को चुनौती दी है और अब वे मिलकर ज्यादा प्रासंगिक प्राथमिक शिक्षा प्रणाली की जरूरत की मांग कर रहे हैं। हालांकि औपचारिक शिक्षा इस इलाके में अभी हाल ही की चीज है पर इसमें जो स्पष्टता आयी है उससे पता चलता हैं कि किस सीमा तक लोग न सिर्फ सक्रिय और निष्क्रिय स्कूलों में फर्क करने लगे हैं बल्कि उन्हें ये भी अपेक्षाएं हैं कि स्कूल और शिक्षा की भूमिका क्या हो।

कई माता–पिता ने स्कूलों के ठीकठाक ढांचे की बात से आगे बढ़कर ऐसी शिक्षा की मांग की जिससे उनके बच्चे स्थानीय काम के लायक बन सकें और बाहर के रोजगार के लायक भी। हालांकि शिक्षा से यह उम्मीद की जाती हे कि वह लोगों की सामाजिक और आर्थिक हालत में सुधार करेगी, माता–पिता यह भी चाहते हैं कि उनके बच्चे समुदाय में बुजुर्गों का आदर करना और उनकी देखभाल करना भी सीखें। समुदाय इसके काबिल है कि बच्चे शिक्षा और काम को एक साथ सम्हाल सकें यह बात इस तथ्य से उजागर होती है कि स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों में कई बच्चे अपने माता–पिता को घर की अर्थव्यवस्था में सहायता भी करते हैं।

इन सभी समस्याओं के बावजूद स्कूलों में बच्चों की दर्ज संख्या काफी ऊंची है इससे पता चलता हे कि समुदाय में शिक्षा की कीमत की जाती है और

उसकी मांग है। अब यह राज्य और शिक्षा प्रशासन की, खासकर शिक्षकों पर है कि वे शिक्षा के लिए इस मांग और इस मानसिकता का लाभ उठाएं। जो प्रारम्भिक शिक्षा दी जाए उसमें समुदाय के ज्ञान को शामिल किया जाय जिससे शिक्षा ऐसी बने कि उससे बच्चे समुदाय से दूर न हों बल्कि वे समुदाय और समाज से जुड़ें और उसमें योगदान दें।

सिफारिशें

एक. प्राथमिक शिक्षा में राज्य की भूमिका बढ़ाना

किसी समुदाय या समाज में स्कूलों को एक केन्द्रीय संस्थानों के रूप में स्थापित करने के लिए और उनका कामकाज स्थिर और प्रभावी बनाने के लिए यह जरूरी है कि राज्य, समाज और शिक्षक एकजुटता से प्रयास करें। स्कूल और स्कूल की पढ़ाई को सिर्फ राज्य या सिर्फ समाज की जिम्मेदारी नही समझना चाहिए। सभी को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए दोनों को जरूरी समझा जाना चाहिए। राज्य स्कूलों को ज्यादा राशि देकर अपना काम पूरा न समझ ले, बल्कि उसे स्कूलों के प्रशासन में भी ज्यादा ध्यान देना चाहिए। राज्य के लिए यह जरूरी है कि वह शिक्षा, खासकर प्रारंभिक शिक्षा को ज्यादा विस्तृत आधार वाले व टिकाऊ विकास की नींव के रूप में देखे। राज्य के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय भूमिका अदा करता रहे और यह न समझे कि सर्वसाधारण को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए बाजार कोई वैकल्पिक व्यवस्था कर सकता है।

दो. स्कूलों के प्रशासन के ढांचे के विकेन्द्रीकरण को मजबूत बनाना

इस बात की एकदम जरूरत है कि पंचायतों और ग्राम शिक्षा समितियों जैसे विकेन्द्रीकृत ढांचे प्राथमिक शिक्षा जैसे मुद्दों के प्रति सक्रिय हों। सभी सदस्यों को ऐसे ढांचों के लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और उसमें इन बातों की जानकारी दी जाना चाहिए कि सदस्यों को बैठक बुलाने का अधिकार है (और वे प्रधानाध्यापक या प्रधानाध्यापिका के द्वारा ऐसा किये जाने की राह न देखें), उन्हें दस्तावेज देखने का अधिकार है, शिक्षकों को जवाबदेह ठहराने का अधिकार है आदि। सदस्यों को इस बात के लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वेस अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से अदा कर सकें और सिर्फ स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस के कार्यक्रमों को

आयोजित करने तक ही खुद को सीमित न रखें। इस बात को रेखांकित किया जाना चाहिए के सदस्यों को स्कूल की जांच करने और उसकी कक्षाओं, चहारदीवारी, शौचालय, पीने का पानी आदि का रखरखाव करने का अधिकार है। इसके अलावा, सदस्यों को इस बात के लिए जागरूक किया जाना चाहिए कि स्कूल के विकास के लिए पूरे समुदाय को योगदान देना चाहिए। सदस्यों को बच्चों के अधिकारों की जानकारी देना चाहिए। उन्हें समुदाय की सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक रिवाजों, जैसे बालश्रम और बालविवाह की भी जानकारी देना चाहिए जिनके कारण बच्चे पढ़ नहीं पाते। इसके अलावा सदस्यों और शिक्षकों को इस बात का भी प्रशिक्षण देना चाहिए कि वे शिकायत कर सकें और स्कूल की चीजों, जैसे पाठ्यपुस्तकों, अनाज और शैक्षिक सहायक सामग्री आदि के प्रदाय से संबंधित मुद्दों के बारे में कार्यवाही आगे बढ़ा सकें। ऐसे प्रशिक्षण में उन्हें उन दूसरे स्कूलों या इलाकों की सफल गतिविधियों के उदाहरणों के बारे में भी बताया जाना चाहिए जहां स्कूल छोड़ने की समस्या का सफलता से समाधान किया गया हो।

तीन. स्कूल–समुदाय समयचक

चूंकि समाज की पारिस्थितिकी, खेती, काम और त्यौहार की गतिविधियां स्कूल के समयचक से टकराते हैं इसलिए हर इलाके के स्कूलों के लिए ऐसे अलग अलग समयचक बनाने की जरूरत हैं जो समुदाय की गतिविधियों के समयचक से मेल खाएं। बच्चों को समुदाय की गतिविधियों और काम में भाग लेने देना चाहिए और ऐसा मानना चाहिए कि ये गतिविधियां स्थानीय ज्ञान और पहचान को नाऐ रखने में सहायक होती हैं। हर समुदाय का अलग समयचक विकसित करने के लिए लचीलापन अपनाने का अधिकार ब्लाक स्तर पर दिया जाना चाहिए। या फिर हर जिले के स्कूलों का ऐसा समयचक बनाया जाना चाहिए जिसमें स्कूल के न्यूनतम और अधिकतम दिनों का स्पष्ट उल्लेख हो। समुदाय पर आधारित ऐसा समयचक अपनाने से बच्चों की ज्यादा गैरहाजिरी की समस्या से मुक्ति मिलेगी और स्कूल और समुदाय के ज्ञान तथा ज्ञान के बीच जो खाई है उसे भरने में सहायता मिलेगी।

चार. शिक्षकों के प्रशिक्षण को नया रूप देना

शिक्षकों के प्रशिक्षण और भरती नीतियों को नया रूप देने की तत्काल जरूरत है। स्कूल को एक आकर्षक जगह बनाने के लिए किये जाने वाले उपाय और कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए कि जिससे शिक्षकों को शिक्षा प्रणाली में सक्रिय घटक बनाया जा सके। शिक्षकों को इस बात के प्रति चैतन्य बनाया जाना चाहिए कि उन्हें बच्चों और उनके माता–पिता की सांस्कृतिक प्रष्ठभूमि की बेहतर समझ बनाने की जरूरत है। शिक्षक एक ओर तो अशिक्षित माता–पिता की सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति संवेदनहीन होते हैं और दूसरी ओर वे बाल विवाह अस्पृश्यता, बंधुआ मजदूरी आदि रिवाजों के प्रति सहनशीलता जताते हैं जबकि ये रिवाज बच्चों के शैक्षिक अवसरों पर असर डालते हैं। प्रशिक्षण और नीतियां ऐसी होना चाहिए कि वे शिक्षकों के इस विरोधाभासपूर्ण रवैयों को बदलें। माता–पिता की संस्कृति और व्यक्तित्व के प्रति संवेदनशील और सहनशील होने के महत्व को शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। साथ ही, प्रशिक्षण में शिक्षकों को यह भी बताया जाना चाहिए कि यह महत्वपूर्ण है कि वे बालविवाह, लिंगभेद जैसे सांस्कृतिक तत्वों को और स्कूल के प्रति माता–पिता की उपेक्षा को ठीक और माफ करने योग्य न मानें और न उन्हें ऐसे व्यक्तिगत तत्व मानें कि जिनके बारे में वे कुछ कर नहीं सकते।

शिक्षक–छात्र रिश्तों में कई नए शिक्षा सिद्धान्त और उन्मुखीकरण लागू किये जाने चाहिए। कुछ प्रचलित मान्यताओं पर विचार किये जाने की जरूरत है– जैसे शिक्षक का दर्जा श्रेष्ठ है और छात्रों का नीचा है, बच्चों को काबू में रखने की जरूरत है और शारीरिक दण्ड दिया जाना चाहिए। भरती के नियम ऐसे बनाए जा सकते हैं कि जससे समुदाय के प्रति शिक्षकों की जवाबदेही बढ़े और यह सुनिश्चित कियह जाए कि समुदाय में ऐसे शिक्षक नियुक्त हों जिस पर समुदाय को भरोसा हो और जिसके प्रति उनका सम्मान हो। कुछ

स्थानीय लोगों ने सुझाया कि शिक्षा विभाग प्रोबेशनरी शिक्षकों को एक साल के लिए समुदाय के पास भेज सकता है। उस शिक्षक की नियुक्ति समुदाय के स्कूल में नियमित और नियमानुकूल तभी जाएगी जब साल के अन्त में समुदाय के स्कूल की समिति उस व्यक्ति के पक्ष में मत देगी।

पांच. स्थानीय ज्ञान और पाठ्यक्रम का विकास

पाठ्यक्रम ऐसा बने कि उसमें स्थानीय ज्ञान को लेकर चलने की और उस ज्ञान को फैलाने में माता–पिता और बच्चों की ज्यादा भागीदारी की व्यवस्था होना चाहिए। स्थानीय ज्ञान में कई माता–पिता दक्ष होते हैं जैसे वानिकी, कृषि, लोक औषधि, कारीगरी आदि। उन्हें समय समय पर शिक्षक के रूप में बुलाया जा सकता है और लोगों के काम और जीवन प्रणाली को पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है।

छः स्कूलों के निरीक्षण और समीक्षा में सुधार

शिक्षा विभाग को ज्यादा सक्रिय और सतर्क भूमिका अदा करने की जरूरत है। निजी और स्वैच्छिक संस्थाओं के स्कूलों का निरीक्षण नियमित रूप से नहीं किया जाता। शिक्षा विभाग को स्कूल के बुनियादी ढांचे का, शिक्षकों की हाजिरी तथा गतिविधियों का, रजिस्टरों के और कागजातों के रखरखाव का और स्कूल के सामान्य कामकाज का नियमित रूप से निरीक्षण करना चाहिए। इसके अलावा, विभाग को पढ़ाने–सीखने के तरीकों, नए पाठ्यक्रम के उपयोग, बच्चों से व्यवहार के बारे में सभी सरकारी और निजी स्कूलों का मार्गदर्शन करना चाहिए और समुदाय–स्कूल के परस्पर संवाद को प्रोत्साहित करना चाहिए।

शिक्षा विभाग को ऐसी तरीका विकसित करना चाहिए कि जिससे स्थानीय निर्वाचित प्रतिनिधि यह देख सकें कि स्कूलों को दी जाने वाली सामग्री स्कूलों तक पहुंचे।

विशेष तौर पर, सामान्य प्रशासन के संदर्भ में, जिसमें स्थानीय निर्वाचित संस्थाएं भी शामिल हैं, प्रशासन को स्कूलों के कामकाज से लगातार जुड़ा रहना चाहिए और स्कूलों की हालतके बारे में तटस्थ नजरिया नहीं अपनाना चाहिए।

सात. बच्चों का संकट कोष

कई बच्चे तब स्कूल से हटा लिये जाते हैं जब माता–पिता, खासकर पिता, की मृत्यु हों जाती है या जब परिवार पर कोई संकट आ जाता है। ऐसी स्थिति में ऐसे बच्चों को पैसों की और चीजों की सहायता दी जाना चाहिए जिससे स्कूल में उनकी हाजिरी सुनिश्चित हो सके। बच्चों का एक संकट कोष उपलब्ध सयहोना चाहिए जिसको सभी ग्राम पंचायत सदस्य, शिक्षा समिति के सदस्य और शिक्षक आवेदन कर सकते हों

आठ. स्कूलों के लिए ब्लाक पुरस्कार

स्कूलों में स्तर और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए एक रास्ता यह है कि वार्ड/जोन स्तरस पर स्कूलों को पुरस्कार दिये जाएं। स्कूलों का मूल्यांकन उनकी उपस्थिति के स्तर, बुनियादी ढांचे के रखरखाव, शिक्षकों के काम और बच्चों की उपलब्धि के स्तर के आधार पर किया जा सकता है। इन पुरस्कारों के समाचारों का प्रचार किया जा सकता है और इससे स्कूलों में गुणवत्ता और स्तर स्थापित करने के लिए एक तरीका विकसित हो सकता है।

नौ. विकेन्द्रीकृत आंकड़े एकत्र करना

स्कूलों के बारे में आंकड़े और जानकारी, जैसे पहुंच, कामकाज, बुनियादी ढांचे की जरूरतें और स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का मसला, को विकेन्द्रीकृत स्तर पर एकत्र किया जा सकता है, जैसे ब्लाक स्तर पर। इन तरीकों से संसाधनों के आवण्टन, जरूरतमंद और अत्यधिक वंचित क्षेत्रों के निरीक्षण और सहायता की प्राथमिकताएं तय की जा सकती हैं। कम दर्ज संख्या और

कम उपस्थिति के आंकड़ों में स्कूल की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि और स्कूल के ठीक काम न करने के कारणों आदि का जिक्र भी होना चाहिए। छमाही समीक्षा के जरिये आकड़ों को प्रधानाध्यापकों/प्रधानाध्यिकाओं से और विकेन्द्रीकृत प्रशासकीय ढांचे से मिली जानकारी के आधार पर आद्यतन बनाया जा सकता है। ऐसे आंकड़े स्कूल और स्थानीय स्तर पर भी उपलब्ध होना चाहिए।